भक्तों की भावभूमि में चिन्मयी श्रीराधा

प्रो. युगल किशोर मिश्र

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्दघन व्रजेन्द्रसुन्दर गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण तथा उनकी नित्य सहचरी रासेश्वरी निखिलगोपीजनमुकुटमणि श्रीराधा हमारे सन्तों तथा आचार्यों के हृदय में एवं शास्त्रीय ग्रन्थों में मूर्तिमान् रसमय विग्रह के रूप में विराजित हैं। ये दोनों एक ही तत्त्व की युग्म-मूर्ति हैं। भक्तशिरोमणि सन्त तुलसीदासजी जिस प्रकार भगवान् श्रीराम और भगवती सीता के लिये कहते हैं–

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहिं परमप्रिय खिन्न।। (मानस बा. का. 18)

इस अन्तिम चरण को भक्तगण इस रूप में भी कहते हैं–

बन्दौ राधा कृष्ण पद जिन्हहिं परमप्रिय खिन्न।

भगवती श्रीराधा आनन्द की निर्झरिणी हैं, कला की अधिष्ठात्री हैं, प्रेम की मूर्तिमान् विग्रह हैं, तथा सौन्दर्य, लावण्य और माधुर्य की सार-सर्वस्व हैं। यहाँ पर विचार उपस्थित होता है कि सौन्दर्य की वास्तविक परिभाषा क्या हो सकती है? भारतीय चिन्तकों और पाश्चात्य चिन्तकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से सौन्दर्य को परिभाषित किया है। सौन्दर्य पर यद्यपि बहुत विचार किया गया है किन्तु सौन्दर्य की एक सहज सरल परिभाषा जो हमारे संस्कृत के साहित्यकारों ने दी, वह है–

यदर्थं सुत्सुको लोकः, यदाप्तुं परमोत्सुकः।
यदाप्य परिभुज्यापि सोत्कण्ठस्तद्धि सुन्दरम् ।। (सुभाषित)

अर्थात् जिसके लिए प्राणिमात्र में ललक एवं आकर्षण हो, और जिसे प्राप्त करने की परम उत्कट अभिलाषा हो, साथ ही जिसे प्राप्त कर लेने और सेवित कर लेने के पश्चात् भी उत्कण्ठा व लालसा बनी रहे, वस्तुतः वही 'सुन्दर' पदवाच्य है। इस दृष्टि से भगवती श्रीराधा को जब हम देखते हैं तो वे इस परिभाषा से भी ऊपर प्रतिष्ठित दिखलाई पड़ती हैं क्योंकि सौन्दर्य की यह परिभाषा नितान्त भौतिक धरातल की परिभाषा है। श्रीराधा को जब परब्रह्मस्वरूपा कहा गया, अनिर्वेद्य कहा गया, आद्याशक्ति कहा गया और सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य की सार-सर्वस्व बताया गया तो यह निश्चित है कि वे इस परिभाषा से कहीं ऊपर की भूमिका में प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए शताब्दियों से साहित्यकारों ने अपने पूर्ण मनोयोग से भगवती श्रीराधा के असंख्य चित्र बनाने के अनवरत प्रयास किये किन्तु अन्ततः चित्रकार स्वयं कह उठता कि अभी तो हम शतांश भी नहीं उकेर पाये और वह दूसरा चित्र बनाने में तल्लीन हो जाता। शिल्पियों ने भी सहस्राब्दियों से अपनी छेनियों से श्रीराधा को उकेरने का प्रयत्न किया किन्तु अन्ततः उसके मन में भाव आता था कि पूर्ण सौन्दर्य एवं वैभव के साथ वह विग्रह उकेर नहीं पाया। वह कला साधना के माध्यम से पुनः भगवती श्रीराधा की आराधना में प्रवृत्त हो जाता। अतएव आज भी भगवती श्रीराधा कला में, साहित्य में, संगीत में मूर्त्त होते हुए भी अमूर्त्त अधिक हैं क्योंकि निस्सीम का चित्रण ससीम साधनों से करना अत्यन्त दुष्कर है। यही कारण है कि अष्टादश पुराणों के महान् प्रणेता और वेदों के परम प्रकाशक

भगवान् वेदव्यास भगवती श्रीराधा को अपनी तपस्या एवं साधना-भावभूमि के सर्वोच्च ग्रन्थ **श्रीमद्भागवत** में पूर्ण सौन्दर्य के साथ मैं उतार सकूँगा, इसमें संशयग्रस्त हो गये। फलतः **श्रीमद्भागवत** में वे श्रीराधा को स्पष्ट रूप से अंकित नहीं कर पाये अपितु बहुत झीने रूप में भगवती श्रीराधा का संकेत मात्र कर सके। संकेत में उन्होंने वर्णन किया कि वृन्दावन में महारास का अवसर है। एकाएक महारास में भगवान् श्रीकृष्ण एक गोपी के साथ अन्तर्हित हो जाते हैं। इस घटना से सारी अन्य गोपियाँ व्याकुल हो उठती हैं कि प्रियतम, व्रजेन्द्रसुन्दर, सच्चिदानन्दघन आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण कहाँ गये? वे व्याकुल हो खोजने में लग जाती हैं। खोजते-खोजते जब वे यमुना के बालुका तट पर आती हैं तो विमल बालुका में श्रीचरण दिखाई पड़ते हैं। आश्चर्य यह है कि वे चरण भी अकेले नहीं हैं। अपितु उसके साथ एक और स्त्री-चरण भी दिखाई पड़ रहा है। तब गोपियाँ समझ जाती हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण किसी महीयसी गोपी से साथ अन्तर्हित हुए हैं। यह बड़भागिन गोपी कौन हो सकती है? यह सोचने पर गोपियाँ कह उठती हैं–

अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यां अनयद् रहः।। (भागवत 10/30/24)

वह कितनी भाग्यशाली गोपिका है जो भगवान् श्रीकृष्ण के इस अनुग्रह की पात्र बनी। उसके भाग्य को जितना सराहा जाय, शब्द नहीं है। इस श्लोक में बहुत ही झीने रूप से भगवती श्रीराधा का भगवान् वेदव्यास स्मरण कर सके हैं। इस पर आचार्यों ने अनेक तर्क एवं विचार प्रस्तुत किये हैं। यहाँ श्लोक में भगवती श्रीराधा का साक्षात् नामस्मरण क्यों नहीं हो पाया जबकि अन्य गोपियों का नामस्मरण हुआ? इस पर **विशुद्धिरसदीपिकाकार** का मत है कि–ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि श्रीराधा परब्रह्म स्वरूपिणी हैं। जो अनिर्वेद्य है, उसका वर्णन शब्दों में कैसे सम्भव है? वे भगवान् श्रीकृष्ण की आत्मा हैं। इस सन्दर्भ में उपनिषद् की एक उल्लेखनीय कथा है कि बाद्धव्य महर्षि के पास ऋषि बाष्कलि जिज्ञासु होकर पहुँचे और उन्होंने निवेदन किया कि मुझे परब्रह्म के स्वरूप का उपदेश कीजिये। एक बार कहने पर महर्षि बाद्धव्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। दुबारा पूछा, कोई उत्तर नहीं मिला। तीसरी बार पूछा, पुनः कोई उत्तर नहीं मिला। अन्ततः चौथे बार जब उन्होंने पूछा तो बाद्धव्य ने कहा कि–मैं तो प्रत्येक बार तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ लेकिन तुम ग्रहण नहीं कर पा रहे हो, समझ नहीं पा रहे हो। जो अनिर्वेद्य व निस्सीम है, जो शब्दों के द्वारा बाँधा नहीं जा सकता, उसका क्या तुम शब्दों में वर्णन मुझसे प्राप्त कर सकोगे? क्या दूध की मिठास शब्दों में वर्णन की जा सकती है? जब भौतिक पदार्थों का शब्दों में वर्णन सम्भव नहीं तो फिर उस परब्रह्म का शब्दों में वर्णन कैसे सम्भव है? महर्षि बाष्कलि को उत्तर मिल गया और वे चले गये। **विशुद्धिरसदीपिकाकार** का कहना है कि चूँकि श्रीराधा आद्याशक्ति हैं, वही समस्त प्रपञ्च की मूल हैं इसलिए उसे भगवान् वेदव्यास स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं कर सके और न ही उनका नामग्रहण कर सके क्योंकि वे अनिर्वेद्य हैं। एक दूसरे आचार्य ने इससे आगे बढ़कर एक व्याख्या की। उन्होंने कहा कि महर्षि वेदव्यास ने **श्रीमद्भागवत** में श्रीराधा का स्मरण साक्षात् रूप से इसलिए नहीं किया कि जब श्रीकृष्ण के साथ सहसा अन्तर्हित श्रीराधा को गोपिकायें ढूँढने निकलीं तो उनमें जो वृषभानुनन्दिनी की सबसे निकट की प्रिय सखी थी उसने बालुका पर जब चरणचिह्न देखे तो वह तत्काल पहचान गई कि यह भगवती श्रीराधा के श्रीचरण हैं लेकिन ऐसी सौभाग्यशालिनी के गुह्य रहस्य को वह अन्य गोपीजन के समक्ष उद्घाटित नहीं करना चाहती थी। इसलिए वहाँ पर श्रीराधा का स्पष्ट रूप से नामोल्लेख न कर केवल यह कह दिया कि–

अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यां अनयद् रहः।। तदेव

पदचिह्नैरेव तां वृषभानुनन्दिनीं परिचित्य अन्तराश्वस्ता बहुविधगोपीजनसंघट्टे तत्र बहिरपरिचयमिवाभिनयन्त्यः तस्याः सुहृद तन्नामनिरुक्तिद्वारा तस्याः सौभाग्यं सहर्षमाहुः। अर्थात् बाहर से उनसे ऐसा अभिनय किया कि मैं नहीं जानती कि यह किसका चरण है लेकिन भीतर से वह सब जानती थी और हर्षित होकर उसे नाम की निरुक्ति से स्मरण किया।

तीसरे आचार्य ने **श्रीमद्भागवत** में श्रीराधा के अतिप्रच्छन्न स्मरण का मर्म बतलाते हुए कहा कि इसमें एक गूढ़ रहस्य है जिसके कारण महारास के प्रवक्ता भगवान् वेदव्यास या भगवान् शुक ने श्रीराधा का नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिया। उनका कहना है कि नित्यलीला में सर्वदा लीन रहने वाले परमहंस भगवान् शुक जब महारास प्रसंग का वर्णन कर रहे थे और भगवान् श्रीकृष्ण राधिका के साथ सहसा अन्तर्हित हो गये तब गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हुई। गोपियों की विरह व्याकुलता के क्षणों में भगवान् शुक स्वयं भी इतने व्याकुल एवं अधीर हो गये कि वे गोपियों के साथ तदाकाराकारित हो गये। गोपियों की उस विरहाग्नि से संतप्त होकर वे अपनी सुधबुध खो बैठे और गोपियों के साथ अत्यन्त अधीर होकर श्रीकृष्ण-स्मरण में लीन हो गये तथा भगवती श्रीराधा का नामोच्चारण अथवा नामोल्लेख करना भूल गये। फलतः **श्रीमद्भागवत** में श्रीराधा का नामोल्लेख न हो सका।

अन्य रसिक ने इससे बढ़ करके एक और तर्क दिया। उन्होंने कहा कि **श्रीमद्भागवत** में भगवान् शुक ने जानबूझकर भगवती राधा का स्मरण नहीं किया क्योंकि भगवान् शुक को यह अभिप्रेत था कि वह भगवती राधा को गुप्त ही रखें। भगवान् श्रीकृष्ण की अन्य लीलाओं का उन्होंने नदी की भाँति वर्णन किया किन्तु भगवती श्रीराधा की लीला का कूपोदक के समान वर्णन किया। यहाँ नदी के समान वर्णन और कूपोदक के समान वर्णन में ही सारा रहस्य निहित है। नदी के पास कोई साधन या उपकरण विहीन प्यासा भी जाता है, तो वह सीधे जाकर नदी से पानी पी लेता है और अपनी प्यास बुझा लेता है। लेकिन कूप के पास यदि कोई प्यासा जाता है तो उसके पास जबतक उपकरण अर्थात् लोटा तथा डोरी नहीं है तब तक वह प्यास नहीं बुझा सकता। भगवान् श्रीशुक ने श्रीराधा का साक्षात् स्मरण इसलिए नहीं किया क्योंकि अन्य लीलायें तो सभी भक्तों के लिये ग्राह्य है, रसपान करने योग्य है तथा उसकी अधिकारिता सब भक्तों में है लेकिन भगवती श्रीराधा की लीला का, उनके लीला रहस्य के ज्ञान करने का अधिकार उसी को है जिसके पास निष्ठा की डोरी हो, प्रेम का कमण्डलु हो यथा भक्ति रूपी पात्र हो। तभी भगवती राधा को, उसके स्वरूप को आत्मसात् कर सकता है। फलतः जिज्ञासु और भक्त की विशेष अधिकारिता प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने अन्य लीलाओं का कल्लोलिनी (नदी) समरूप वर्णन किया और भगवती श्रीराधा का कूपजलोपम वर्णन किया। इसलिये श्रीराधा नाम को अन्तर्हित कर संकेत मात्र में कहा– "**अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।**"

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण कलावतार हैं किन्तु उनकी पूर्णता भगवती श्रीराधा के बिना असंवेद्य है। 'भगवान्' कहलाने का वही अधिकारी है जो– समस्त ऐश्वर्य का स्वामी हो। सौन्दर्य सार-सर्वस्व अगर उसके पास नहीं है तो फिर उसकी भगवत्ता कैसी? इसलिए श्रीकृष्ण की भगवत्ता भगवती श्रीराधा के आश्रित है। यह भारतीय संस्कृति की एक बड़ी विशेषता भी है। भारतीय संस्कृति का एक उत्कर्ष रूप यह है कि वह संकेतित करता है कि भगवत्ता जबतक श्रीराधा (शक्ति) से संयुक्त न हो तबतक अपूर्ण है।

एक ध्यातव्य बात यह भी है कि एक ओर शास्त्र कहते हैं कि संसार का त्याग करके हम मोक्ष के अधिकारी बनें और दूसरी ओर **श्रीमद्भागवत** आदि मान्य ग्रन्थ हमें प्रेमविग्रहमयी श्रीराधा की उपासना का उपदेश देते हैं। सामान्यतया 'प्रेम' बन्धन का कारण होता है अतः उसके मुक्ति-पथ की प्रशस्ति कैसे संभव है। जो संसार में बाँध दे ऐसी उपासना करना कितना उचित है? इस पर हमारे शास्त्रकारों ने उपदिष्ट किया कि दोनों मार्ग हैं–

'त्यक्तव्यो ममकारः किन्तु स सर्वत्र त्यक्तव्यः' (सुभाषित)

अर्थात् जीव को ममत्व त्यागना चाहिये और सर्वत्र त्यागना चाहिये तभी वह मोक्ष का अधिकारी बनता है। किन्तु यदि यह मार्ग कठिन जान पड़ता है तो फिर दूसरा मार्ग है–

'कर्त्तव्यो ममकारः किन्तु स सर्वत्र कर्त्तव्यः'

अर्थात् आप ममत्व रखिये किन्तु वह ममत्व-बुद्धि सर्वत्र करिये तो भी आपको वही मोक्ष का मार्ग मिल जायेगा। फलतः भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता यह हुई कि यहाँ पर त्याग से भी मोक्ष प्राप्ति है और प्रेम से भी मोक्ष प्राप्ति है।

प्रेम और काम में क्या भेद है? यह एक जाग्रत प्रश्न है। इस सम्बन्ध में भक्तशिरोमणि श्री जीव गोस्वामी का कथन है कि आत्मेन्द्रियप्रीति 'काम' है तथा कृष्णेन्द्रियप्रीति 'प्रेम' है। तात्पर्य यह निकलता है कि यदि हम अपने भीतर अवस्थित 'काम' को 'प्रेम' के रूप में बदलना चाहें तो हमें मात्र इतना ही करना पड़ेगा कि अपनी आत्मेन्द्रियप्रीति को कृष्णेन्द्रियप्रीति की ओर मोड़ दें। इस सन्दर्भ में संस्कृत का एक सुन्दर श्लोक हमारे सामने आता है जिसमें एक सहृदय ने ये भाव अभिव्यक्त किये हैं–

"हे विधाता! पंचतत्त्वों से निर्मित मेरा यह भौतिक शरीर अंत में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच कारण तत्त्वों में जब विलीन हो तो मेरा जल-तत्त्व उस कूप में समाहित हो जाय जिस कूप में श्रीकृष्ण और भगवती राधा के गुणगान मंगल गीतों से करती हुई गोपिकायें पानी भरने के लिये आती हों ताकि मैं प्रेम भक्ति में पगी हुई उनकी छाया से धन्य हो सकूँ। मेरा तेजस्-तत्त्व उस दर्पण में समाहित हो जाय जो दर्पण भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती राधा के देवालय में उनके सम्मुख स्थापित होता हो ताकि मैं राधा-कृष्ण के प्रतिबिम्ब से धन्य हो सकूँ। मेरे शरीर का आकाश-तत्त्व श्रीराधा-कृष्ण मन्दिर के उस गर्भगृह में विलीन हो जिसमें श्रीराधा-कृष्ण विराजित हैं ताकि मैं उनका स्पर्शानुभव प्राप्त कर सकूँ और मेरा पार्थिव तत्त्व उस भूमि (पगडण्डी) में समाहित हो जाय जिस पगडण्डी पर चलकर भगवन्नामोच्चारण करते हुए भक्तगण श्रीराधा-कृष्ण के देवालय में जाते हों। मेरा वायु-तत्त्व उस व्यजन (पंखा) में मिल जाय जिस पंखे से श्रीराधा-कृष्ण को हवा की जाती हो।"

आत्मेन्द्रियप्रीति से कृष्णेन्द्रियप्रीति की ओर बढ़ने पर चरम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष अत्यन्त सहजता से प्राप्त हो जाती है। किन्तु आचार्यों एवं सन्तों ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रीति का यह मार्ग सरल नहीं है अपितु अत्यन्त कठिन है। किसी सन्त ने कहा है–

चढ़िबौ भौंन तुरंग पर चलिबौ पावक मांहि।
प्रेम पंथ ऐसौ कठिन सब कोई निबहत नांहिं।। (बिहारी कवि)

भगवती श्रीराधा का भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति जो एकनिष्ठ प्रेम है वह अनुपमेय एवं आदर्श है। इसका वर्णन करते हुए एक कवि ने ये भाव अभिव्यक्त किये हैं–

ग्वालिन कृष्ण दरस सौं अटकी।
बार बार पनघट पर आवत सिर यमुना जल मटकी।
मनमोहन को रूप सुधानिधि पिवत प्रेमरस गटकी।।
ग्वालिन कृष्ण दरस सौं अटकी।
कृष्णदास धन-धन्य राधिका लोक लाज सब पटकी।।
ग्वालिन कृष्ण दरस सौं अटकी। (कवि कृष्णदास)

एक अन्य भक्त कवि ने यह उद्भावना की, कि भगवती श्रीराधा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को अपनी आँखों से निर्निमेष देखना चाहती हैं और उनके लिए पलकों का एक क्षण के लिये गिरना भी असह्य एवं वज्रपात के समान हो जाता है–

देखन देति न बैरन पलकें।
निरखत बदन लाल गिरधर को, बीच परत मानों बज्र की सलखें।

भगवती श्रीराधा के प्रेम का यह चरमोत्कर्ष है कि उन्हें क्षणमात्र के लिए भी श्रीकृष्ण का वियोग सह्य नहीं है। दूसरी ओर भगवान् श्रीकृष्ण की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की है जिसे एक रसिक संस्कृत कवि ने श्लोक में वर्णन करते हुए कहा है–

"भगवान् श्रीकृष्ण राधा के प्रेम में वशीभूत होकर भाद्रपद की एक घनघोर अंधकारमयी रात्रि में मिलने के लिए चल पड़े। वृषभानुनन्दिनी के द्वार पर पहुँच कर उन्हें एकान्त रात्रि में बुलाने की इच्छा से युक्ति सोचकर कोयल की आवाज निकाली, फिर मयूर की आवाज निकाली, फिर अन्य पक्षियों की आवाजें निकालीं। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा के कानों में जब ये स्वर पहुँचे तो वे समझ गई कि प्रियतम श्रीकृष्ण मेरी सोत्सुक प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे पलंग से उठकर दबे पांव नीचे आयीं और द्वार की अर्गला खोलने लगीं कि तभी उस अर्द्धरात्रि के नि:शब्द वातावरण में उनकी चूड़ियाँ खनक उठीं और दुर्भाग्य का क्षण उपस्थित हो गया। भीतर की अंधेरी कोठरी में सोई हुई वृद्धा चिल्ला उठी–कौन है, कौन है! इस प्रकार वृद्धा की आवाज से भयभीत प्रियतमालिङ्गनोत्सुक श्रीराधा अधखुले कपाट पर मस्तक डालकर विरहाग्नि में तड़पने लगीं और सम्मुख स्थित श्रीकृष्ण किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर संतप्त अवस्था में उन्हें निहारते रहे। अन्ततोगत्वा मिलन का कोई मार्ग न पाकर श्रीकृष्ण को भगवती श्रीराधा के महल के उपवन के कोने में वृक्ष के नीचे छिपकर श्रीराधा के स्मरण में रोमांचित हो वह अंधेरी रात बितानी पड़ी साथ ही दूसरी ओर श्रीराधा को महल के भीतर विरह में सिसकते हुए रात व्यतीत करनी पड़ी।"

रसिक कवियों ने पूर्णकलावतार श्रीकृष्ण का प्रेम वशीभूत होकर विरहाग्नि में दग्ध होने को जिस ढंग से वर्णित किया है, वह अद्वितीय है। वस्तुत: यह संतों एवं आचार्यों की अतिशय कृष्णेन्द्रियप्रीति को दर्शाता है। इस भावभूमि पर जब मानव मन प्रतिष्ठित होता है तब उसे अद्भुत आनन्द की प्रतीति होने लगती है और सांसारिक वासनायें एवं मृत्युभय नष्ट होकर सच्चिदानन्द स्वरूप का वह दर्शन करता है। श्रीराधा की 'प्रेम' भक्ति में तल्लीन संत कबीर ने जो अद्भुत आनन्द का अनुभव किया उसे उन्होंने श्रीराधा का नाम लिये बिना इस पद्य में अंकित किया है–

हमारे गुरु दीन्ही अजब जड़ी।
कहा कहौ कछु कहत न आवे, अमृत रसन भरी।
पांचो नाग पचीसों नागिनि, सूंघत तुरत मरी।
डाईनी एक सकल जग खायो, सो भी देख डरी।
याहि ते मोहे प्यारी लागे, लेके गुपुत धरी।
कहे कबीर भया घट निर्मल, सकल व्याधि टरी।
हमारे गुरु दीन्ही अजब जड़ी। (कबीरवाणी)

सन्त कबीर ने उपर्युक्त पद्य में गुरु कृपा से प्राप्त उस अद्‌भुत जड़ी का वर्णन किया है जिसे प्राप्त कर वे आनन्द विभोर हैं और जिसका वर्णन वे शब्दों से करने में असमर्थ हैं। यह जड़ी श्रीराधा नाम के अतिरिक्त क्या कोई हो सकती है? कथमपि नहीं। अतएव संत कबीर कहते हैं कि इस अद्भुत जड़ी के गन्ध मात्र से पांचो नाग- अर्थात् काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ मर जाते हैं और इनकी सहचारिणी सांसारिक वासनायें नष्ट हो जाती हैं। मृत्यु रूपी डाईन जो कि बची रह गयी वह भी इसे देखते ही भय के मारे कम्पित होने लग जाती है। इस 'राधा' नाम के उच्चारण से शरीर रूपी घट निर्मल हो जाता है तथा मोक्षानन्द का साक्षात् अनुभव प्राप्त हो जाता है। अतएव यह (राधा नाम की) जड़ी मुझे अत्यन्त प्रिय है और मैंने इसे गुप्त रखी है।

इस अद्‌भुत जड़ी को वैदिक काल से साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने गुप्त ही रखा और इसी परम्परा में महर्षि वेदव्यास से लेकर आधुनिक काल के सन्तों तक ने भी इसे गुप्त रखा। वेद के उषस् सूक्त में उषस् और सूर्य के रूपक से यह सिद्ध किया कि भगवती श्रीराधा पुराणी होती हुई भी नवयौवना है और सूर्यरूप में श्रीकृष्ण उनके प्रेम में विह्वल होकर अनन्य भाव से उन्हें उपासित करते हैं। भगवती श्रीराधा और भगवान् श्रीकृष्ण का यह शाश्वत प्रेम वस्तुतः अनुभवसंवेद्य तत्त्व है। अतएव वेदों में, **श्रीमद्भागवत** में और सन्तों की वाणी में श्रीराधा-तत्त्व संवृत होकर ही शोभायमान है और यही उसके निरतिशय माहात्म्य का ख्यापक भी है।

• • • • •